कहानी

पानी पर लिखा खामोश अफसाना

ममता सिंह

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां और शास्त्रीय-संगीत पर लेख एवं साक्षात्कार प्रकाशित। कुछ वर्ष पत्रकारिता के बाद संप्रति आकाशवाणी की विविध भारती सेवा में उद्घोषिका।
मो. : 9757098498

रात भी कभी-कभी सुबह-सी लगती है, गाढ़ी रात ढलती है तो भोर होती है... भोर में टूटते सितारे से अपने मन की मुराद मांगें तो पूरी हो जाती है... नानी अक्सर यह बात कहती थीं। नानी की इस बात को मैंने अपनी जिंदगी के पन्ने की हेडलाइन बना लिया। जब-जब आसमान में कुहासा छाया, मन जब-जब दर्द से भीगा, तब-तब यही सोचा कि अब शाायद सुबह होगी। और धीरे-से गाने की ये लाइन गुनगुनाने लगती, 'वो सुबह जरूर आएगी' ...और इसके बाद ये गाना, जिसे मम्मी अक्सर गुनगुनाती थी, 'देखो जी बहार आई, फूलों में फुहार लाई।' सुबह की लाली मेरे आंगन में भी छाई है। सूरज नारंगी झबला पहनकर मेरे घर भी आता दिख रहा है। मैंने जल्दी से अपने घर की खिड़कियां खोल दी हैं। कमरे की कोने की तिपाई पर सजी कांच की पनिहारिन पर सूरज ने आईना चमकाया और धीरे-धीरे वह नारंगी रंग से सफेद चाक रंग में बदल गई और मेरी आंखें चुंधिया गईं। मिचमिचाई आंखों से मैंने मोबाइल के व्हाट्स-एप मैसेज देखे, लेकिन अनरीड ही छोड़कर मोबाइल टेबल पर रखकर गुनगुनाती हुई रसोई में आ गई।

पतीले में दूध रखकर, चायपत्ती, और चीनी का डिब्बा निकालकर प्लेटफॉर्म पर रखा, अदरक कूटने के लिए खलबत्ता ढूंढ़ ही रही थी कि दूध उफनकर काले ग्लॉसटॉप बर्नर पर फैल गया... 'ओह शिट, चलो अब सुबह-सुबह गैस भी साफ करो।'

'जलते चूल्हे पर दूध का गिरना शुभ होता है' कहीं से जैसे मम्मी की आवाज आई। गृह-प्रवेश के दिन तो मम्मी ने जान-बूझकर ढेर सारा दूध छलका दिया था और पापा ने कहा था, 'ये सब झूठे ढकोसले हैं।' मम्मी की बात का सिरा पकड़कर मैं यादों की वादियों में गुम होती चली गई। यादों के साथ रहना मुझे बड़ा सुहाता है। मैं अपने सारे गम भुला देती हूं यादों के दामन में। मेरी यादों की वादियां बड़ी खूबसूरत हैं। जहां हरे-भरे पेड़-पौधे हैं, झरने-पहाड़ और नदियां हैं। वह सब कुछ है जो मैं करना चाहती हूं... जो मैं पाना चाहती हूं... मेरी इसी दुनिया में ख्वाबों का लंबा काफिला भी है, जहां मैं ख्वाबों के पंख लगाकर उड़ती हूं। रुक कर बर्फीले पहाड़ो की खूबसूरती को आंखों में भर लेती हूं। नरम दूब पर बैठकर सुस्ताती हूं। पौधों के सहलाकर फूलों से बतियाती हूं। मेरे सपनों का संसार बेहद सुंदर है। मेरी इस फंतासी की दुनिया में कोई ख्वाब टूटता नहीं। जो कुछ नहीं मेरे साथ, वह भी मैं जीती हूं... जीती-जागती जिंदगी की तरह। अपनी इसी यादों और ख्वाबों की दुनिया में मैं चांद से बतियाती हूं, तारे जमीं पर लाकर अपने थाल में सजाती हूं... चांद की रोटी पकाती हूं... तारों से कहानी सुनती हूं... और मम्मी के गले लगकर खूब रोती हूं। दर्श कहता है, 'ये तुम्हारी आभासी दुनिया हकीकत से दूर करती है, कल्पनाओं में ले जाती है, इसलिए तुम जरूरत से ज्यादा इमोशनल हो जाती हो... आभासी दुनिया का नहीं, टेक्नॉलॉजी के इस युग में रिश्तों में जज्बात अहम नहीं होते, समझदारी मायने रखती है। ...मैं उसकी ये बात ऐसे सुनती हूं जैसे कुछ सुना ही नहीं। उसे ब्लैंक लुक देकर अपनी उसी दुनिया में गुम हो जाती हूं, जहां मम्मी मुझे स्कूल के लिए तैयार कर रही हैं, मेरा टिफिन बॉक्स मेरे बैग में रख रही हैं... मुझे यूनीफॉर्म, जूते-मोजे पहना रही हैं... अपने हाथों से खाना खिला रही हैं... स्कूल जाने से पहले नसीहतों की घुट्टी

पिला रही हैं और दुआओं की ताबीज पहना रही हैं। नींद से पहले मेरे लिए लोरी गा रही हैं... और उनके हाथ पर अपना सिर रखकर मैं सपनीली दुनिया में सो रही हूं। मेरे यादों के खूबसूरत जहां बीहड़ रेगिस्तान भी है, जहां जाने से मन घबराता है। लेकिन आज मुझे सैर करनी है, मुझे उस टीले पर जाना है, जहां मुझे डर लगता है... उस टीले से मैं मम्मी को आवाज देती हूं, लेकिन आवाज मेरे गले के भीतर ही घुटकर रह जाती है... मम्मी-पापा दोनों भटक गए हैं रेतीले बगूले में... मैं उन्हें खोज रही हूं, उन्हें। अपने पास महसूस कर रही हूं, उन्हें छूना चाहती हूं... मम्मी का आंचल अपने आंसुओं से भिगोना चाहती हूं... मैं उन्हें अपने पास बुलाना चाहती हूं... उनसे कहना चाहती हूं कि आपके बगैर ये दुनिया मेरे लिए सिर्फ दु:खों का दरिया है, अगर दर्श न होता तो मैं कब की खत्म हो गई होती। उसी ने गम के बीहड़-घने अंधेरे में रोशनी की नन्हीं किरण दिखाई है... तपते रेगिस्तान में नदी-सी ठंडक दी है। दर्श ने ही जिंदगी में झरनों की रवानी से रू-ब-रू कराया और मैंने उसके साथ गुनगुनाना सीखा, लेकिन फिर भी आने वाली जिंदगी को लेकर आज मन सैलाब बना हुआ है...

जिंदगी का एक अहम फैसला... हाथों की रेखाओं में कहीं मम्मी के हाथ की रेखा तो नहीं मिली है। दर्श वैसा ही जैसा मैं चाहती हूं... धूप में सघन छांव की तरह। मेरी नाराजगी पर फूल बन मुस्कुराता है। जिंदगी के हर छाले पर फाहा लगाता है। मेरी हर परेशानी में वह सहयोग करता है। मेरे गुस्से को भी सिर आंखों पर लेता है। मोबाइल पर गाने भेजता है... 'यूं ही तुम मुझसे बात करती हो, या कोई प्यार का इरादा है।'

समंदर के किनारे एक चट्टान पर मैं और दर्श बैठे थे। मेरे गुलाबी दुपट्टे के छोर को उसने अपनी नीली कमीज की आस्तीनों में लपेट लिया, 'ये लो हमारा गठबंधन हो गया' और आंख भरके मुझे देखता रहा... मैंने अपनी ठंडी, नम, बेजान आंखों से देखा और पलकें झपकाकर लहरों के पार दूर क्षितिज को देखने लगी, जहां आसमान समंदर में उतरा था। सिंदूरी रंग पानी में घुल गया था। समंदर की सुनहरी शाम को मैं आंखों में भर लेना चाह रही थी... डूबते सूरज की नाजुक किरणें खारे पानी पर चांदी-सी झिलमिला रही थीं।

मुझे अफसोस होता है कि लोग समंदर के किनारे होते हुए भी समंदर के किनारे नहीं होते। कहीं और अपने मन की दुनिया में, अपने तनाव की दुनिया में होते हैं। समंदर की इन्हीं लहरों की तरह... तुम समा जाओ मेरे भीतर सांची! पूरी तरह डूब जाओ मुझमें, दर्श बोला था।

वह लम्हा मेरे लिए सदी बन गया। सहेज लिया मैंने अपने मन के सात दरवाजों के भीतर... मेरे अकेलेपन की सदी उस एक पल में तिरोहित हो गई थी... बारीक मुस्कुराहट मेरे भीतर की बात कहने को आतुर थी। लेकिन मैं उसे भीतर... और भीतर... जब्त करती रही। लेकिन दर्श ने भांप लिया और दौड़ता हुआ लहरों के बीच आया, मेरे करीब आई लहरों से पानी उलीच-उलीचकर छपाक-छपाक मेरे मुंह पर डालने लगा... चेहरे पर नमक घुल गया था... जीभ पर नमकीन स्वाद कसैला नहीं बल्कि शीरीं लग रहा था।

कुछ लोग हर रिश्ते में भयभीत होते हैं, जिंदगी के दर्द को भीतर तक समोए हुए। यकीन ही नहीं होता कि दर्द के दरिया में खुशियों का रंग भी घुल सकता है। इसी में मैं अपना नाम शुमार करती हूं। अंधेरे से डरने की बचपन वाली आदत आज भी कायम है। रात के अंधेरे में हिलता हुआ पर्दा आज भी अजब-सी शक्ल बनाता है मेरे सामने, और मैं चिहुंक कर बैठ जाती हूं। साइड-टेबल पर रखे शादी के कार्ड में चमकीले अक्षरों में अपना और दर्श का नाम पढ़ती हूं। आज ही उसके साथ मित्रों के घर कार्ड बांटने जाना तय हुआ है। हालांकि व्हाट्सएप और ई-मेल पर निमंत्रण पहुंच चुका है, लेकिन दर्श के घर वाले जैसे पिछली सदी में जी रहे हैं, उनके मुताबिक खुद जाकर कार्ड देना चाहिए।

यादों के बियाबान में भटकते मन ने किताब के वो पन्ने खोल लिए हैं, जिसमें कुछ तल्ख और तकलीफदेह लम्हें दर्ज हैं, जिन पर मन की सुई रूह तक ऐसे धंस जाती है कि उसे बाहर निकालना मुश्किल हो जाता है। सुई की चुभन असीमित कराह पैदा करती है और मन चीत्कार उठता है। मन की किताब में कुछ खूबसूरत पल भी दर्ज होते हैं जो आपके क्षणिक सुकून के लिए काफी होते हैं। यादों के महासागर में मैं गहरे तक डूबती जा रही हूं और ज्वार-भाटा जारी है... तब मैं छोटी थी, पापा-मम्मी दोनों दफ्तर से थोड़े-ही समय के अंतराल पर घर लौटते। ढलती शाम के वक्त मैं प्रोटीनेक्स या बॉर्नवीटा वाला दूध पी रही होती... कभी-कभी विजया आंटी मुझे उस समय ब्रेड-जैम या बिस्कुट भी खाने को देती थीं। दोपहर को स्कूल से लौटती तो बस से मुझे विजया आंटी ही 'पिक' करती थीं। हालांकि बस-स्टॉप पर उन्हें देखकर मैं उदास हो जाती थी। जिस दिन मम्मी या पापा मुझे 'पिक' करते, मैं उन्हें देखकर खिल जाती थी। विजया आंटी को देखते ही मेरा मूड खराब हो जाता... मैं रोती थी। विजया आंटी मुझे जबर्दस्ती खाना खिलातीं और खूब सारा तेल मेरे सिर में और पैरों में चुपड़ देतीं... फिर ठोंक-ठांककर सुलातीं। अगर उस दौरान मम्मी का फोन आ जाता, तो मैं उनसे शिकायत करती और मम्मी मुझे समझातीं... विजया आंटी को जाने क्यों कहतीं कि उसके बाद उनका बर्ताव मेरे प्रति थोड़ा नरम हो जाता था। कई बार मुझे सुलाने की कोशिश नाकाम हो जाती तो वह मुझे कफ-सीरप भी पिलाती थीं ताकि मैं सो जाऊं और वह भी

आराम फरमा सकें। शाम को जैसे ही मम्मी आतीं, विजय आंटी अपना पर्स खास अंदाज में उठातीं और गोल-गोल घुमाकर हिलाती हुई 'बाय' कहकर चली जातीं। उनका जाना मुझे बड़ा अच्छा लगता क्योंकि एक तो उसके बाद मुझे मम्मी का साथ मिलता, दूसरे उस वक्त मेरे लिए टी.वी. लगा दिया जाता और मैं चैनल बदल-बदलकर 'अकबर बीरबल की कहानियां', 'डिस्कवरी किड्स' या 'छोटा भीम' देखती थी। दिन में मुझे टी.वी. नहीं मिलता था, मम्मी रिमोट छिपाकर जाती थीं ताकि मैं और विजया आंटी टी.वी. से ही न चिपके रहें। उस समय मम्मी चाय बनाकर लातीं और पापा-मम्मी सामने के सोफे पर बैठकर एक साथ चाय पीते थे... अदरक वाली चाय की महक कमरे में फैल जाती थी। चाय पीते हुए दोनों महीन आवाज में कुछ बतियाते... मम्मी का चेहरा कभी खुश नजर आता, तो कभी नाराजगी में वह पापा को देख रही होतीं। पापा के चेहरे का भाव रोज एक जैसा होता था। कई बार उनके जोर से बोलने पर मुझे अपने कार्टून सीरियल के डायलॉग सुनने में असुविधा होती, तो मैं पिनक जाती थी। उन दिनों मुझे हर बात पर गुस्सा आता था। हर बात चिढ़कर या रोकर बोलती थी। यहां तक कि मम्मी-पापा को मैं आपस में बात करते देखती तो उन्हें जानबूझकर डिस्टर्ब करती। मुझे लगता कि वह सिर्फ मेरी तरफ ही मुखातिब रहें। उन्हें एक साथ बैठे देखकर मैं बिना बात के रूठ भी जाती थी। मेरी इस आदत से परेशान होकर पापा डीवीडी पर मेरे लिए बच्चों की कोई फिल्म लगा देते ताकि मैं हंगामा न करूं। ऐसे वक्त में अक्सर मम्मी-पापा अपने बेडरूम में चले जाते। दरवाजा भीतर से बंद कर लेते। मुझे कौतूहल होता कि जाकर देखूं कि वो भीतर क्या कर रहे हैं, लेकिन फिल्में इतनी दिलचस्प होती कि मैं अपनी जगह पर अपनी बेबी-डॉल के साथ टी.वी. के सामने ही बैठी रहती।

बेडरूम का दरवाजा खुलता तो मम्मी का चेहरा कुछ निखरा-सा लगता... ज्यादा खुश दिखतीं और पापा हमसे खूब लाड़ करते। एक दिन मम्मी के गालों पर लिपस्टिक के दाग लग गए थे। कमाल की बात कि पापा के कान के पास बिंदी चिपकी थी। मैं 'खी-खी' करके हंस पड़ी।

'क्या हुआ'- मम्मी ने पूछा। मैंने हाथ का इशारा कर दिया। मम्मी वापस बेडरूम में गई और लौटकर आईं तो उनके चेहरा रानी गुलाबी हो गया था।

'क्या बॉइज ईयर के पास बिंदी लगाते हैं मम्मी?

पापा का चेहरा दहक उठा था। उस शाम मम्मी-पापा ने मॉल ले जाने का वादा किया था। वह रोज की तरह बेडरूम में बंद हो गए। अचानक मुझे शरारत सूझी और मैं दरवाजे पर जाकर चिपक गई। सोचने लगी, आखिर मम्मी-पापा बेडरूम में इतनी देर तक करते क्या हैं। दरवाजे में एक छोटी-सी झिरी थी। इस दरवाजे में सुराख मेरी वजह से हुआ था। बकौल मम्मी जब मैं डेढ़ साल की थी तो मैंने दरवाजा अंदर से बंद कर लिया था, लेकिन मुझे खोलना नहीं आया। जब ये एहसास हुआ कि मैं अंदर से बंद हूं, तो जोर से रोना शुरू कर दिया था। लॉक तोड़ा गया, तब से उस दरवाजे में एक छोटा-सा होल बन गया था। मैंने देखा, मम्मी रो रही थीं। पापा उन्हें अपने आगोश में लेने की कोशिश कर रहे थे। मम्मी दूर छिटककर कुछ कह रही थीं... मेरे नन्हें बाल मन ने इतना ही समझा कि मम्मी रूठ गई हैं और पापा उन्हें मना रहे हैं। लेकिन उस दृश्य ने मुझे जैसे अचानक समझदार बना दिया... दुनियादारी सिखा दी। मम्मी छोटी बच्ची में तब्दील हो गईं वो जब कमरे से बाहर आईं तो उनकी आंखों की चमक सियाह रात में बदल गई थी... अपनी आंखों की नदी सुखाने की कोशिश कर रही थीं और वो मेरी नजरों से बच रही थीं। लेकिन मेरी आंखें उनका लगातार पीछा करती रहीं। उनके गालों का रंग आज गुलाबी नहीं था, पीला-जर्द था। मेरी इच्छा हुई कि मैं सपनों वाली जादूगरनी बनकर मम्मी को आसमान की सैर कराऊं। उनके चेहरे पर इंद्रधनुषी रंग पोत दूं... मैं उठी, उनसे लिपट गई... उनके भीतर की नमी को महसूस करती रही।

'मम्मी चलो हम कहीं बाहर घूमने चलें' ...मम्मी अक्सर मुझे ऐसे ही बहलाती थीं, जब मैं रोती थी। उस दिन के बाद से मम्मी के चेहरे पर न तो गुलाबी रंग दिखाई दिया, न ही पापा ने अपने ईयर के पास बिंदी चिपकाई। अब मुझे बात-बात पर डांट पड़ने लगी। मेरी जिन शरारतों पर मम्मी, बलैयां लेतीं, हंसतीं, अब उन पर मुझे डांट या मार खानी पड़ती। कई बार वह 'स्टेच्यू' बन जातीं। पापा के शब्दों में 'बर्फ' या 'पत्थर' बन जातीं। पापा की मौजूदगी में मैं उनसे कुछ कहती, तो कहीं दूर दूसरी ओर देखने लगतीं।

उस शाम के बाद से वे साथ-साथ बैठते, चाय पीते, लेकिन दोनों के बीच चुप-सी लगी होती, जैसे 'खामोश-सा अफसाना, पानी पर लिखा होता।' पापा सन्नाटा तोड़ने की गरज से कुछ बोलते, लेकिन शब्द गूंजते रह जाते, मम्मी वहां से उठकर घर के किसी दूसरे छोर पर चली जातीं, लेकिन दोनों अलग-अलग मुझसे बराबर संवाद रखते। सवालों के बादल से मैं घिर जाती। कई बार जानने की कोशिश करती तो मम्मी की आंखें नम हो जातीं या फिर वह 'स्टेच्यू' बन जातीं। उनकी ये अदा मुझे जरा-भी रास नहीं आती थी, मैं गुस्से और खीझ में रोने लगती तो मम्मी मुझे सीने से चिपका लेतीं, मेरी पीठ सहलातीं, लेकिन कुछ बोलती नहीं। मैं और मम्मी जब घर में अकेले होते तो वह मेरे साथ लूडो, सांप-सीढ़ी, जेन्गा खेलतीं या फिर 'अरेबियन नाइट्स' वाली कहानियां पढ़कर सुनातीं। इसी बीच अगर पापा का फोन आ जाए, तो बस फिर उन पर खामोशी तारी हो जाती। खिड़की की ओर शून्य में उनका ताकना, दीवार पर टंगी अपनी तस्वीर को एकटक देखना मुझे

अखरने लगता था... उस समय उनकी आंखें चौड़ी और बड़ी लगती थीं। एक दिन उनकी इस मुद्रा से मैं भयभीत हो गई और मैंने उन्हें आवाज दी, 'मम्मी, मम्मी।' मैंने उनसे लिपटकर अपनी उंगलियों से उनकी आंखों को छुआ, पलकों को ऊपर उठाकर देखा, उनमें पानी था, नमी थी।

–मम्मी रो रही हो।

–नहीं, नहीं तो।

–पर आपकी आंखों में तो ये आंसू हैं, ये देखो मेरी उंगलियां गीली हो गई हैं।

–नहीं रे, यूं ही पानी आ गया होगा सांची।

–आंखों में पानी मतलब रोना ही हुआ ना?

मुझे समझ में नहीं आया, आंसू, पानी और रोने का फर्क। मैं उनसे अगला प्रश्न पूछूं कि इससे पहले वो उठकर चली गईं। आंसू, पानी और रोने का फर्क काश इसका मतलब उस समय समझ पाई होती।

एक दिन हम कहीं जा रहे थे, मम्मी ने गाढ़े नीले रंग की साड़ी पहनी। उसी से मैचिंग ईयरिंग। गले में माला, लाल बिंदी और लिपस्टिक... बड़ी सुंदर लग रही थीं। मैं उन दिनों कुछ ज्यादा ही बातूनी हो गई थी। जाने क्या-क्या तो बोल रही थी, अब याद नहीं। बस इतना याद है कि उन्होंने मेरे हाथ को अपनी हथेली में रखकर प्यार किया और उनके लाल होंठ मेरी हथेली पर छप गए। मेरे हाथ में लगी लिपस्टिक पोंछ दीजिए, मैंने ठुनकते हुए कहा था। मम्मी ने टिशू से पोंछा भी, लेकिन निशान बाकी रह गया था।

'जिंदगी में बहुत सारे निशान बाकी रह जाते हैं, जो मिटाने पर भी नहीं मिटते, कुछ खरोचें ताजिंदगी सालती हैं', कहते हुए मम्मी फिर गंभीर हो गईं। उनकी आंखों में आंसू जैसे हर वक्त गागर की तरह भरे ही रहते। थोड़े-थोड़े अंतराल पर ढुलकते रहते।

'तुम मरीज हो गई हो और सायकिक भी, और ये मर्ज सांची को भी दे रही हो', पापा ने खीझते हुए कहा था।

'सांची को बीच में न लाओ तो बेहतर' मम्मी तल्ख हो गई थीं। शायद उन दिनों मम्मी सचमुच बीमार हो गई थीं। तभी तो वह डॉक्टर के पास जातीं।

मम्मी-पापा डॉक्टर के केबिन में थे। मुझे नर्स के पास बिठा दिया गया था। मैं आंखें बंद करके मम्मी के स्वस्थ होने की भगवान से प्रार्थना कर रही थी। ठीक उसी तरह जैसे मम्मी मेरे और पापा के लिए आंखें बंद करके 'प्रे' किया करती थीं। अचानक जोर से मम्मी का रुदन सुनाई पड़ा था और मैं दौड़ी थी डॉक्टर के केबिन की ओर। नर्स ने चॉकलेट देकर मुझे बहला दिया था।

उस खास सुबह की स्मृति तरोताजा है... जब पापा ने मुझे गोद में उठा लिया था। हॉल में गुब्बारे सजे हुए थे। गुलदान में नए फूल... खिड़की में नीले पर्दे... साइड टेबिल पर गिफ्ट-रैपर में लिपटा हुआ कुछ था, जिस पर हिंदी में पापा ने कुछ लिख रखा था, जो उस समय मैं नहीं पढ़ पाई थी और पापा से पूछा था। तब मैंने नया-नया हिंदी पढ़ना शुरू किया था। पापा ने शादी की सालगिरह के माने 'वेडिंग एनिवर्सरी' बताए।

'मैं भी बड़ी होकर खूब सारे गिफ्ट्स आपको दूंगी' बचपन की नन्हीं और मासूम-सी ख्वाहिश पंख लगाकर उड़ रही थी। अलग ही नूर था उस दिन घर में। कुछ ज्यादा उजले दिए की तेज रोशनी की तरह। उस दिन बार-बार मम्मी आकर मुझे गले लगाकर प्यार कर रही थीं। लेकिन फिर भी उनकी आंखों में घने बादल थे, जो रह-रह कर बरस रहे थे।

–'मम्मी, आज सेलीब्रेशन के दिन आप क्यों उदास हैं?'

–'उसे आंसुओं से प्यार हो गया है, खुशनुमा पलों में भी उदासी तलाश लेती है, न वह खुद खुश रहना चाहती है, न ही दूसरों को खुशहाल देखना पसंद करती है।'

एक बार फिर माहौल सन्नाटे और तल्खी से भर गया था। पापा कंप्यूटर रूम में चले गए। जाते-जाते उनके कुछ शब्द हवा में उड़ते रहे... 'सूरज की रोशनी में भी किसी को अंधेरा ही नजर आए तो फिर इस अंधेरे की उजास कभी नहीं होगी।'

'मन की नदी पर इतने बांध बन गए हैं कि बहाव रुक गया है। इतनी सिलवटें हैं कि ठीक करते करते आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है। अब तुम्हारी ये बातें मुझे नहीं पिघलातीं।' मम्मी के होंठ कांपे थे। मुझे बांध और सिलवटों का मतलब समझ में नहीं आया था।

'तुम आखिर चाहती क्या हो।'

'मैं क्या चाहती हूं ये जानने के लिए मेरे मन के समंदर में उतरना होगा। लहरों में बहना होगा। तुम एक नजर में, एक मिनट में मुझे पढ़ना चाहते हो...नहीं सौरभ...! जरा मेरे मन की खिड़की में तो झांको। कितनी उथल-पुथल है, कितना बवंडर है। बारीक नजर से देखो, मेरे मन का पूरा संसार तुम्हें दिखाई देगा। इस भयानक शोर-गुल और भीड़ में मैं कितनी अकेली हो गई हूं, कभी तुमने ये जानना ही नहीं चाहा। मेरे लिए व्यक्तिगत और वस्तुगत मूल्यस एक निर्मूल हो गए हैं। मेरे भीतर लरजती आवाजें तुम सुनना ही नहीं चाहते हो। मेरी आवाज के पीछे छिपी महीन चिलकन तुम्हें दिखावा लगती है। क्योंकि तुम्हारी दिखावे में ही जीने की आदत हो गई है। तुम परतों को खोलना ही नहीं चाहते... तुम सिर्फ ऊपर-ऊपर देखते हो। मन के भीतर, चेहरे के पीछे क्या चल रहा है, तुम जानना ही नहीं चाहते।'

'ये सब कुछ तुम्हारा वहम है, फोबिया हो गया है तुम्हें। ताजिंदगी तुम साइकियाट्रिस्ट के चक्कर काटती रहो, इसी में

हम सबकी भलाई है।'

'उस व्यक्ति को भी वहम है, मेनिया और फोबिया है, जो उस दिन तुम्हारी जान का दुश्मन बन गया था? ...सामने सब कुछ आर-पार स्पष्ट हो जाने पर भी तुम उस खौफनाक बात को वहम कह रहे हो।'

मम्मी की आंखों में फिर सैलाब उठा था। पापा ने मोबाइल उठाया, स्क्रीन पर देखा, उनके चेहरे की खीझ महीन मुस्कान में तब्दील हो गई थी। बालकनी में लगे पौधे की पत्ती पर एक बूंद ठहरी थी, ढुलक कर टूट गई। मेरे भीतर भी कुछ दरक गया था। लेकिन मुझे पूरा किस्सा नहीं समझ में आया था।

उन दिनों घर में एक ही स्थायी भाव रहता था, खामोशी, उदासी या तकरार। उस रात मम्मी ने लाल सितारे वाली साड़ी पहनी थी। खूब सारे जेवर पहनकर तैयार हुई थीं। मुझे भी खूब सजाया मम्मी ने। खूब मन से कई व्यंजन बनाए। डाइनिंग टेबल पर तीन थालियां लगाईं।

'मम्मी हम तो आज पार्टी करने कहीं बाहर जाने वाले थे ना?'

'पापा को घर लौटने में देर होगी इसलिए।'

'मम्मी पार्टी हम लोग कल करेंगे क्या?'

'मम्मी, पापा देर से आएंगे, तो ये तीसरी थाली किसकी लगाई है आपने।'

'पापा की। उनके होने का एहसास ही काफी है, कहीं भी रहें, साथ ही होते हैं। कुछ व्यक्ति जीवन से इस कदर बंध जाते हैं कि उनसे अलग अपनी जिंदगी अर्थहीन लगती है। लेकिन मन को कहां पता होता है कि अचानक जिंदगी नदी के दो किनारों की तरह हो जाती है, जहां हम साथ चलते हुए भी अलग-अलग हो जाते हैं। आज ही के दिन तेरे पापा और हम एक अटूट रिश्ते में बंधे थे।'

उस दिन मम्मी, कुछ ज्यादा ही बोल रही थीं। वैसे भी मम्मी का मिजाज इन दिनों काफी बदल गया था। कभी बेमतलब की बात पर हंसतीं, कभी अचानक गमगीन हो जातीं... रोना तो जैसे उनका प्रिय शगल हो गया था... कभी भी किसी भी पहर शुरू हो जाता... यूं कहें कि रोना उनका स्थायी भाव बन गया था। तब मुझे नहीं पता था कि वह दिन अब डायरी के पन्ने में तब्दील हो जाएगा। उस दिन के बारे में जरा भी मुझे आभास होता, तो मैं वक्त को रोक लेती... वह सब कुछ करती जो एक छोटी बच्ची नहीं कर सकती। बहरहाल... मम्मी ने उस दिन अपने हाथों से खाना खिलाया, जरा भी खीझी नहीं, गुस्सा नहीं किया। वर्ना इन दिनों मुझे बात-बात पर डांटतीं और दूसरे ही पल गोद में लेकर पुचकारतीं। लेकिन उस दिन ऐसा कुछ नहीं किया। मुझे खाना खिलाने के बाद वह लगातार लोगों से फोन पर बात करती रहीं। उनकी बातों से लग रहा था कि फोन पर अलग-अलग लोग हैं। फोन पर बातें करते हुए खिलखिला कर हंस पड़ रही थीं, जैसे लाफ्टर चैंपियन वाले शो में बैठी हों।

कई बार इंसान अपने भीतर की ज्वाला शांत करने के लिए हंसी के छींटे मारता है। काश उनके भीतर का दावानल उस दिन मुझे दिखाई दे जाता, तो मैं ज्वालामुखी नहीं बनने देती। उन्हें नदी की तरह ठंडी कर देती, काश उस दिन मैं मम्मी के मन के छाले को देख पाई होती। मम्मी ने उस रात भी मुझे अपने हाथों पर लिटाया, पहले लोरी गाई और फिर कहानी सुनाने लगी। लेकिन वह कहानी अचानक किसी घटना में बदल गई। 'सांची, मुझे ऐसा लग रहा है, घनी रात का साया... विराट समंदर.... लहरों के ऊपर मैं तैर रही हूं, अचानक तेज लहर मुझे समंदर की गहराई में लिए जा रही है। ये लहरें फेनिल, श्वेत, चमकीली नहीं हैं... स्याही-सी घुली है इनमें। इन डरावनी लहरों से बाहर आने की कोशिश व्यर्थ-सी लग रही है। मैं सुनते-सुनते जाने कब नींद और सपनों की दुनिया में पहुंच गई थी, खबर ही नहीं मुझे। नींद में एक सपना और जागती आंखों से दूसरा सपना देख रही थी। ये सपना नींद वाले सपने से बेहद खौफनाक था। पापा का रोना, बिलखना, चीत्कार पहली बार मैंने अपने घर में इतनी भीड़ देखी। यहां न समुद्र, न लहरें, न कोई किनारा... मैंने अपनी आंखों पर हाथ रखके खूब जोर से दबाया और आंखें चौड़ी करके कन्फर्म किया कि मैं नींद में हूं या जाग रही हूं... या जागते हुए कोई डरावनी फिल्मी देख रही हूं। कुछ समझ में आए इससे पहले पड़ोस वाली काजल आंटी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर एहसास करा दिया कि मैं जाग रही हूं और ये सब जो मैं देख रही हूं, हकीकत है। काजल आंटी ने मेरे कान में अपना मुंह डालकर पूछा, 'तुम्हारे पापा और मम्मी में कुछ अनबन चल रही थी क्या।'

मैंने अपनी आंखें उन पर चिपका दीं।

'तुम्हारी मम्मी किसी अंकल से मिलती-जुलती थीं।'

'मतलब...'

'मतलब पापा के अलावा उनका कोई फ्रेंड वगैरह...?'

'या तुम्हारे पापा की कोई गर्लफ्रेंड वगैरह...?'

...

'सांची बेटा बताओ न, कल तुम्हारे घर में क्या हुआ था।'

काजल आंटी कुछ ज्यादा आत्मीय हो गई थीं।

'आप काजल आंटी हैं या पुलिस आंटी...।' मैं चुपचाप उठी और मम्मी से लिपट गई।

'मम्मी जमीन पर क्यों सो रही हैं, उठिए न मम्मी... रात वाली अधूरी स्टोरी पूरी कीजिए ना...। आप समंदर में अकेली थीं मम्मी! फिर क्या हुआ... आप डरी नहीं समंदर की ऊंची लहरों से...?' मैं मम्मी को हिला रही थी, पापा मुझे अपनी ओर खींच रहे थे। मैं मम्मी से और चिपकती जा रही थी... मम्मी सचमुच की स्टेच्यू बन गई थीं। ये कोई गेम नहीं था।

पापा ने मुझे गोद में उठा लिया, मुझसे लिपटकर रो रहे थे।

'तेरी मम्मी हमें छोड़कर चली गईं।'

'लेकिन ये तो यहां हैं।'

'नहीं बेटा... ये देह है उनकी।'

पापा बहुत देर तक मुझसे कुछ कहते रहे और मैं पूछती रही। पर उस वक्त मेरी आंखों के सामने कुहासा-सा छा गया था... जैसे रात का-सा अंधेरा हो गया हो। मैं डरी-सहमी रोए जा रही थी।

अचानक हथेली पर आंसू की एक बूंद आकर गिरी है... जैसे तब से अब मेरा रोना थमा ही न हो। और सचमुच मम्मी के जाने के बाद मैं कितनी अकेली हो गई थी। मेरा बचपन जैसे कहीं गुम हो गया था। मैं पापा की बेटी नहीं, पापा की दोस्त बन गई थी। रात को उठकर अक्सर मम्मी को मैं अपने बिस्तर पर खोजती। कई बार जोर से चीख पड़ती।

मन के किवाड़ अभी बंद नहीं हुए थे कि मैं मम्मी की आलमारी खोलकर बैठ गई, जिसमें छोटी-सी संदूकी में सोने के पुराने जेवर, चांदी के कुछ सिक्के, कुछ भूली-बिसरी चाभियां पड़ी हैं...। साड़ी के कवर में था फुलकारी वाली नीली शॉल, गुलाबी स्वेटर, जरी वाली कुछ साड़ियां और कुछ ड्रेस मैटेरियल, जो सिलवाए जाने थे शायद किसी खास मौके पर। वहीं कुछ चूड़ियां बिखरी थीं और लेदर का पर्स भी रखा था, जिस पर सफेद फफूंद लग रही थी, उसे साफ करने की गरज से उठाया तो उसमें से कागज का एक बंडल नीचे गिर गया और एक छोटी-सी नोटबुक बाहर निकल आई... जिस पर मम्मी की लिखावट नीले मोतियों-सी चमक रही थी...

'मुझे अपने आपसे शिकायत है, मैं तुम्हें पढ़ ही नहीं पाई... हम एक ही जिल्द में बंधी किताब की तरह हैं, लेकिन अलग-अलग पन्नों में हम अपने-अपने दुखों के साथ निपट अकेले हैं। एक ही दरख्त की अलग-अलग शाखाओं पर कांपते पत्तों की तरह हैं हम, जिनके भीतर की सिहरन और एकांत को कोई नहीं जानता। फर्ज और जिम्मेदारियों के बोझ तले गुम हो गई नाजुक इच्छाओं के बारे में किसी को पता नहीं होता। वैसे तुमने तो बखूबी निभाई अपनी जिम्मेदारी यहां तक कि खास पलों को भी फर्ज की तरह निभाते चले गए। मुझे तो एहसास ही नहीं हुआ, तुम मुझसे इतनी दूर जा चुके हो। तुम्हारे प्यार की राजदार तो मैं हूं ही नहीं। वो रिश्ता, वो प्रेम, वो इंतजार, वो साथ, वो तड़प, वो उदासी, वो मुस्कान, वो हंसी, वो रुदन मेरे लिए छलावा, उसके लिए हकीकत या उसके लिए छलावा मेरे लिए हकीकत...? सौरभ! अब तक का हमारा इतना लंबा साथ महज एक भरम रहा। हम साथ जीते हुए भी रोज साथ-साथ मरते रहे... क्योंकि हम-तुम साथ थे ही नहीं। तुम्हारी जिंदगी में तो मैं थी ही नहीं मेरी जिंदगी तो खूबसूरत नाटक बन गई है। लेकिन सौरभ, मैं अपना किरदार अब नहीं निभा पाऊंगी। जानती हूं ये फिल्मी अंदाज है, जी नहीं सकती तो मर तो सकती हूं तुम्हारे साथ... लेकिन फिर अपनी सांची का क्या होगा। इसलिए तुम्हें सांची के लिए छोड़ रही हूं। उम्मीद है उसकी परवरिश पूरे समर्पण से करोगे।'

जमाने भर में जिसे प्यार कहा जाता है, उसे तुमने बोझ और सजा बना दिया है। आखिर तुममें कौन-सी चाहना है, जो मृगमरीचिका की ओर भाग रहे हो, तुमने हरे-भरे खेतों के रास्तों को छोड़कर जलती रेत के रास्तों को चुन लिया... तुम अपने पांव जलाते रहे और मैं उन पर मरहम लगाती रही... क्योंकि इसी में मुझे दिल सुकून मिलता रहा। मैं रोज तुम्हारे लिए दुआओं की ताबीज बनाती रही, उस ताबीज का असर किसी और पर होता रहा। ये कैसा मायाजाल... ये कैसा कुचक्र रच गया हंसती-खेलती जिंदगी में... जिंदगी की हरियाली खोजते-खोजते तुम किस बियाबान में भटक गए... जहां सूखे रंगहीन ठूंठों के सिवा कुछ भी नहीं है।'

'अपनी इस कथा के अंत में सिर्फ इतना ही कि सांची पर हमारी जिंदगी का साया न पड़े। मेरी इस दुआ का असर जरूर होगा।'

मैं नोट बुक के उन पन्नों को बार-बार उलट-पुलट कर पढ़ रही हूं। बचपन से जिए हुए एक-एक लम्हें को याद करते हुए सुई में धागे की तरह पिरो रही हूं, लेकिन नाकाम हो रही हूं। आखिर क्याा था पापा का वो राज, जिसने मम्मी को दुनिया छोड़कर जाने को मजबूर किया। मम्मी और पापा के रिश्ते के बीच क्या एक गैप था? दोनों का रिश्ता क्या एक सूखे पत्ते की तरह था...? ऊपर से जो दिखता था, क्या वो भीतर से खोखला था... आखिर क्या कमी थी उनके बीच... जो हरा-भरा पौधा मुरझा गया, वो कौन-सा अधूरापन था, जो पूरा नहीं हो सका। सवालों की नदी के पार जाने की मैं कोशिश कर रही हूं, लेकिन दूर तक कोई किनारा नजर नहीं आ रहा। मम्मी आंखों से ओझल ही नहीं हो रही हैं। काश पहले मिली होती ये नोटबुक मुझे, तो पापा से पूछती इन सवालों के जवाब। काश मैं मम्मी की खामोशी की माने समझ पाई होती। सवालों के दंश से कराह रही हूं मैं। कहीं मम्मी का सच मेरा सच भी न हो जाए। कहीं दर्श भी...। कितना समझ सकता है कोई किसी को। कितनी कितनी पर्तें होती हैं एक इंसान की। मैं आज अपने इस अहम फैसले पर विचलित क्यों हो रही हूं। आखिर क्यों मैं अकेलेपन के महासागर में डूबती जा रही हूं, जबकि दो जिंदगियां समान नहीं होती हैं।

...मोबाइल उठाया तो देखा दर्श के अनगिनत मिस्ड कॉल हैं। भारी मन से कॉल-बैक कर रही हूं।